19

तोहि समझायो सौ सौ बार

तोहि समझायो सौ सौ बार,
जिया तोहि समझायो सौ सौ बार।
देख सुगुरु की परहित में रति, हित उपदेश सुनायो।
तोहि समझायो.....

विषय भुजंग सेय दुःख पायो, पुनि तिन सों लिपटायो।
स्वपद विसार रच्यो पर पद में, मद रत ज्यों बौरायो।।
तोहि समझायो.....

तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो।
क्यों न तजे भ्रम, चाख समामृत, जो नित सन्त सुहायो।।
तोहि समझायो.....

अबहूँ समझ कठिन यह नरभव, जिनवृष बिना गमायो।
ते विलखें मणि डाल उदधि में, 'दौलत' सो पछितायो।।
तोहि समझायो.....

अनेक बार समझाने पर भी यह मोही जीव आत्म हित में नहीं लगता इसलिये कविवर कहते हैं कि हे जीव! अब तू श्रीगुरू की तरफ देख तो सही, परहित अर्थात् दूसरों के कल्याण की भावना होने के कारण श्रीगुरु तुझे समझाते हुये तेरे हित की बात कह रहें है।

तूने विषयरूपी सर्प के विष का सेवन करके बहुत दुःख पाया है, लेकिन फिर भी तू उन्हीं से प्रीति करता है। तू शराब के नशे में मस्त पागल व्यक्ति की भांति अपने वास्तविक पद (स्वरूप) को भूलकर परपद में ही लीन हो रहा है, ।

हे जीव! यह शरीर, धन, मित्र आदि तेरे नहीं हैं, तू उनसे व्यर्थ ही स्नेह करता है। तू ऐसे मिथ्याभ्रम को छोड़कर समतारूपी अमृत रस का पान क्यों नहीं करता जो रस मुनिराजों को सदा सुहाता है।

कविवर दौलतरामजी कहते है कि यह मनुष्य भव मिलना बहुत दुर्लभ है। और जो जीव इस मनुष्य भव को जिनधर्म की आराधना के बिना गंवा देते हैं वे बाद में उसी प्रकार विलाप करते हैं जिस प्रकार कोई चिंतामणि रत्न को समुद्र में फेंककर विलाप करता है और अंत में पछताता है।